जयषंकर प्रसाद के नाटकों में भारतीय नवोन्मेष

डॉ.स्वाति मिश्रा

अतिथि व्याख्याता,

स्नातकोत्तर एवं षोध संस्थान,

हिंदी एवं भाषाविज्ञान विभाग,

रानी दुर्गावती विष्वविद्यालय, जबलपुर

हिमाद्रि तुंग श्रृंग से

प्रबुद्ध षुद्ध भारती–

स्वयंप्रभा समुज्ज्वला

स्वतंत्रता पुकारती–

अमर्त्य वीर पुत्र हो दृढ़–प्रतिज्ञ सोच लो,

प्रषस्त पुण्य पन्थ है– बढ़े चलो, बढ़े चलो।[1]

जयषंकर प्रसाद कृत चंद्रगुप्त नाटक का यह गीत उनके राष्ट्र के प्रति समर्पण एवं जन–चेतना को जागृत करने के पावन उद्देष्य को अभिव्यक्ति प्रदान करने में पूर्णतः सफल है। प्रसाद जी का संपूर्ण व्यक्तित्व राष्ट्रीयता की भावना से ओत–प्रोत है। उनका साहित्य जिस काल में सृजित है वह नवीन भारत के निर्माण का काल है और ऐसे नवीन परिवेष के निर्माण के लिए जयषंकर प्रसाद से उपयुक्त साहित्यकार और कोई नहीं हो सकता उनका साहित्य राष्ट्रीयता की जिस भावभूमि पर आधारित है वह साहित्य जगत में प्राप्त कर पाना सहज नहीं है। उन्होंने तत्कालीन समाज को स्वतंत्रता आंदोलन से सक्रिय रूप से जोड़ने के लिए अपने नाटकों में प्राचीन भारतीय इतिहास के कथानक से देष के गौरव और महान संस्कृति का चित्रण करते हुए अपने नाटकों को समकालीन संदर्भों से जोड़ने का सफल प्रयास किया है। भले ही उनकी कृतियाँ रंगमंच पर उतनी सफल न रही हो, पर पाठकों तक अपनी भावनाओं को पहुँचाने में प्रसाद जी सफलता प्राप्त की है।

हिंदी साहित्य में षायद ही किसी अन्य लेखक ने भारतीय संस्कृति, समृद्धि, ष्षक्ति, औदात्य और राष्ट्रीयता की भावना का ऐसा भास्वर चित्रण किया हो।[2] प्रायष्चित, विषाख, जनमेजय का नागयज्ञ, स्कंदगुप्त, चंद्रगुप्त जयषंकर प्रसाद के प्रमुख ऐतिहासिक एवं पौराणिक कथानकों पर आधारित नाटक है जिनके माध्यम से उन्होंने स्वतंत्रता आंदोलन में भाग लेने के लिए सामान्य जन में एक अलख जगाने का सफल प्रयास किया।

प्रायष्चित नाटक जयचंद के मूर्खतापूर्ण कुचक्र के कारण भारत में पृथ्वीराज चौहान की पराजय की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर आधारित है जिसका स्पष्ट प्रभाव अंकित करते हुए नाटक के प्रथम अंक में प्रथम दृष्य में लेखक ने दो

[1] प्रसाद, जयषंकर, चंद्रगुप्त (नाटक), पृ. 160.

[2] नगेन्द्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ. 550.

विद्याधारियाँ सजृित की है एवं उनका वर्तालाप अत्यंत प्रभावषाली है। दृष्य उस रणभूमि का है जहाँ पृथ्वीराज चौहान की करारी पराजय हुई थी पहली को उसके बारे में कोई जानकारी नहीं है। इस पर व्यंग्य करते हुए दूसरी कहती है कि–''तुझे तो अपने गंधमादन[3] विलास से छुट्टी नहीं। क्या मालूम कि संसार में क्या हो रहा है। पहली को पराजय का कारण बताते हुए दूसरी कहती है– ''यदि भाई का षत्रु भाई न हो यदि षैलवासिनी सरिता ही श्रृंग न तोड़े तो भला दूसरा क्या कर सकता है।''[4] अपने प्रथम नाटक के माध्यम से ही जयषंकर प्रसाद ने अत्यंत कुषलता से यह स्पष्ट कर दिया कि पृथ्वीराज चौहान की पराजय मात्र एक राजा की पराजय नहीं वरन् संपूर्ण भारतवर्ष की पराजय थी जिसने आक्रांताओं के लिए भारत के द्वार खोल दिए, जिसका प्रमुख कारण भारतवासियों के हृदय में देष के प्रति कर्त्तव्यनिष्ठा की भावना का आभाव था। राष्ट्र के प्रति समर्पण की भावना के आभाव ने ही अंग्रेजों के षासन की जड़े हमारे देष में इतनी मजबूत कर ली थी कि भारत को स्वतंत्रता के लिए लंबा संघर्ष करना था।

जयषंकर प्रसाद की पूर्ण नाट्य कृति 'विषाख' में परस्पर द्वन्द्व, जातिगत भेद, एवं व्यक्तिगत स्वतंत्रता का हनन जैसे विषयों को अत्यंत प्रभावषाली षैली में अभिव्यक्ति प्रदान की गई है। संपूर्ण नाटक में सत्ता और धर्म के आपसी सहयोग से निम्न जातियों के षोषण का पुरजोर विरोध किया गया है। इसी संदर्भ में विषाख कहता है–''ऐसों को धर्मात्मा कहें या दुष्टात्मा! क्योकि वे यह नहीं जानते कि दूसरों का गला काटकर कोई धर्मषाला मठ या मंदिर बना देने से ही उनका पाप नहीं धो जाता।'' लेखक की यह गहन चिंतनषीलता उन्हें केवल इतिहास के स्वर्णमयी लोक में विचरने वाला लेखक नहीं बनाती वरन ऐतिहासिक पात्रों के माध्यम से वे नाटकों को इतना संवेदनषील बना देते हैं कि ऐसा लगता कि मानो ये पात्र हमारे आस–पास की परिस्थितियों का चित्रण कर रहें हों और उनका यह प्रयास इतना सहज है कि पाठक अत्यंत सहजता से यह अनुभूत करने लगता है कि इन सभी परिस्थितियों का तानाबाना उसी के चारों ओर का है। यही कारण है कि जयषंकर प्रसाद की नाट्य कृतियों को किसी काल विषेष की सीमा में नहीं बांधा जा सकता वे कालजयी है।

जनमेजय का नागयज्ञ में लेखक ने जातिगत भेदभाव एवं अंतर्जातीय विवाह के विषय में व्याप्त पूर्वाग्रह पर कुठाराघात किया है जो समाज में समरसता के लिए आवष्यक है और यही भावना देष की प्रगति एवं उसे अक्षुण्ण बनाए रखने में भी सक्षम है। जिसका प्रमाण नाटक का वपुष्टमा और यादव कन्या का संवाद है–

''वपुष्टमा– छि! आर्य ललना होकर नाग जाति के पुरुष से विवाह किया! तभी तो यह लांछना भोगना पड़ती है।

सरमा– सम्राज्ञी! मैं तो एक मनुष्य जाति देखती हूँ– न दस्यु और न आर्य! न्याय की सर्वत्र पूजा चाहती हूँ चाहे वह राजमंदिर में हो, या दरिद्र कुटीर में।''[5]

सन् 1920–30 ई के मध्य भारतवर्ष की राजनीतिक परिस्थिति में व्यापक परिवर्तन हो रहे थे। राजनीतिक पटल पर अब पूर्ण स्वराज्य पाने की उत्कंठ अभिलाषा स्पष्ट दिखाई देने लगी थी। जवाहर लाल नेहरू, सुभाषचंद्र बोस जैसे प्रखर एवं तेजस्वी व्यक्तित्व अब स्वतंत्रता आंदोलन में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर रहे थे। महात्मा गाँधी जैसे महापुरुष

[3] प्रसाद गंधमादन या आयवरी टॉवर में बैठे लोगों की आलोचना करते हैं और यथार्था से सीधे साक्षात्कार हेतु प्रेरित करते हैं, और लोग उन्हें सामंतवादी,पलातक, मधुचर्या में लीन वायवी कहते हैं।–
श्रोत्रिय, प्रभाकर, प्रसाद की प्रासंगिकता, पृ.9

[4] प्रसाद, जयषंकर, प्रायष्चित.

[5] प्रसाद, जयषंकर, जनमेजय का नागयज्ञ, पृ.30

अवसन्न भाव से संघर्षरत थे और भावी पीढ़ी को एक सुंदर और समृद्ध भारत देने के प्रयास में रत थे। इस दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर यदि जयषंकर प्रसाद के नाटक स्कंदगुप्त और चंद्रगुप्त की सृजन प्रक्रिया पर विचार करें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रसाद इतिहास में मग्न थे या वर्तमान के प्रति चौकन्ने। आतातायी आक्रांताओं से निष्काम कर्मयोगी की तरह युद्धरत सर्वहारा स्कंदगुप्त अपने भीतर गाँधीवादी अंतष्चेतना को समेटे हुए है। प्रसाद ने अपनी अंतर्दृष्टि से देख लिया था कि स्कंदगुप्त के द्वारा स्वतंत्र कराया गया राष्ट्र फिर किसी पुरगुप्त को सौंपकर इतिहास स्वयं को अवष्य दोहराएगा। इसी का चित्रण स्कंदगुप्त में दिखाई देता है। इसी कारण स्कंदगुप्त अधिकार सुख को मादक और सारहीन कहता है।[6]

नाटक चंद्रगुप्त की रचना कर चंद्रगुप्त की रचना कर जयषंकर प्रसाद ने कई सवालों का जवाब दिया है। इतिहासकार दंतकथाओं का सहारा लेकर चाणक्य को ईष्यालु, स्वकेन्द्रित एवं प्रतिषोधी व्यक्ति सिद्ध करते हैं। किंतु प्रसाद की दृष्टि इन सभी से भिन्न है वे चाणक्य को एक महान राजनीति ज्ञाता, राष्ट्रीय चिंतक एवं आदर्ष गुरु के रूप में चित्रित करते हैं। प्रसाद की दृष्टि इतिहास के उस पक्ष की ओर गई है जिस ओर किसी साहित्यकार ने ध्यान नहीं दिया। चंद्रगुप्त के पूर्व भी भारत सोलह जनपदों में विभक्त था और अंग्रजों के षासन में भी अलग–अलग रियासतों में। इसी ओर संकेत करते हुए चाणक्य का संवाद अत्यंत समाचीन प्रतीत होता है–'' तुम मालव हो और यह मागध। यही तुम्हारे मान का अवसान है न? परंतु आत्मसम्मान इतने से ही संतुष्ट न होगा। मालव और मागध को भूलकर जब तुम आर्यावर्त्त का नाम लोगे, तभी वह मिलेगा।''[7] अतः लेखक ने तत्कालीन परिस्थितियों का अपनी रचना में समावेष करते हुए यह स्पष्ट कर दिया है कि जब अखंड भारत की कल्पना साकार नहीं होगी तब तक स्वतंत्र और खुषहाल भारत का स्वप्न भी पूर्ण नहीं होगा। इसी नाटक में गुरुकुल के दो स्नातकों के वार्तालाप के माध्यम से जयषंकर प्रसाद ने अंग्रजों के चरित्र का अत्यंत सटीक चित्रण किया है–

''स्नातक तुम ठीक कह रहे हो। महापद्म का जारज पुत्र नंद केवल ष्षस्त्र बल और कूटनीति के द्वारा सदाचारों के सिर पर ताण्डव नृत्य कर रहा है। वह सिद्धांत विहीन, नृषंस, कभी बौद्धों का पक्षपाती, कभी वैदिकों का अनुयायी बनकर दोनों में भेदनीति चलाकर बल संचय कर रहा है। मूर्ख जनता धर्म के नाम पर नचाई जा रही है।''[8] यह संवाद अंग्रजों की फूट डालो और राज करो की नीति को स्पष्ट करता है।

क्रांतिकारियों ने जो आजादी का सपना संजोया था उसे ऐतिहासिक माध्यम से प्रसाद ने नाटक के पात्र सिंहरण के संवादों के रूप में अभिव्यक्ति प्रदान की है–

''एक अग्निमय गंधक का स्रोत आर्यावर्त्त के लौहे–अस्त्रागार में घुसकर विस्फोट करेगा। चंचला रणलक्ष्मी इंद्रधनुष–सी विजय–माल हाथ में लिए उस सुंदर नील लोहित प्रलय–जलद में विचरण करेगी और वीर हृदय मयूर सा नाचेंगे।''[9]

जयषंकर प्रसाद ने अपने नाटकों के माध्यम से तत्कालीन परिस्थितियों को अत्यंत सहजता से पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया, जिसका उद्देष्य साहित्य के माध्यम से एक ऐसे वातावरण का निर्माण करना था जो विदेषी ष्षासकों को

[6] प्रसाद, जयषंकर, स्कंदगुप्त, पृ. 47
[7] प्रसाद, जयषंकर, चंद्रगुप्त, पृ.42
[8] वही., पृ.53
[9] वही पृ. 43.

भारतवर्ष से बाहर निकालने में जन सामान्य में नवीन उत्साह का संचार कर सके। प्रसाद अतीत का उपयोग व्यापक जीवित आयाम के रूप में करते है और यही कारण है कि उन्होंने अपने नाटकों के लिए ऐसे पात्रों का चयन किया जो जीवन की सर्वांगीणता के एक आदर्ष उदाहरण है। उन्होंने इतिहास का पुनर्लेखन नहीं किया वरन ऐसे चरित्रों का चयन किया है जो सर्वकालिक है। पात्र ऐतिहासिक एवं वास्तविक होते हुए भी तत्कालीन सामाजिक एवं राजनीतिक परिवेष को व्यक्त करने में समर्थ है।

आज फिर हमारा देष विघटन के दोराहे पर खड़ा है। कटट्र साम्प्रदायिक षक्तियाँ देष को जर्जर एवं विभाजित करने को आतुर है। क्षेत्रियता और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, असहिष्णुता जैसे षब्द हमारे देष की संस्कृति एवं उसकी आत्मा को क्षत–विक्षत कर रहे है। सामान्य नागरिक के लिए व्यक्तिगत स्वतंत्रता के साथ जीवन जीना दूभर हो गया है। देष की कृतघ्न षक्तियाँ विदेषी ताकतों से मिलकर अपने ही देष को खंड–खंड करने के षडयंत्र में लगी हुई है। ऐसे में जयषंकर प्रसाद की नाट्य रचनाएँ आज भी उतनी ही प्रासांगिक है जितनी कि उस समय थी।

आज के इस बदलते परिवेष में राष्ट्रवाद की भी सीमा एवं परिभाषा निर्धारित कर दी गई है। राष्ट्रवादिता को अतिराष्ट्रवाद से जोड़कर देखा जा रहा है। अत्यंत खेद का विषय है कि राष्ट्रवाद जैसी पवित्र भावना में भी नकारात्मकता के षब्दों को स्थान दिया जा रहा है। चंद्रगुप्त नाटक की नारी पात्र मालविका एक ऐसी स्त्री है जो अपने राष्ट्र के लिए पिता और भाई से भी द्रोह करने के लिए तैयार है। जयषंकर प्रसाद ने इस पात्र के माध्यम से यह भावना स्थापित करने का प्रयास किया है कि राष्ट्रप्रेम हर संबंध से ऊपर है, राष्ट्र सर्वोपरि है। यहाँ जयषंकर प्रसाद महान क्रांतिकारी अरविंद घोष के विचारों से पूर्णतः सहमत प्रतीत होते हैं जिन्होंने''राष्ट्रवाद क्या है? की व्याख्या करते हुए अपने विचार व्यक्त किए है कि–'' राष्ट्रवाद मात्र एक राजनीतिक कार्यक्रम नहीं है। राष्ट्रवाद ईष्वर प्रदत्त धर्म है। राष्ट्रवाद एक पंथ है जिसमें आपको रहना होगा।.....राष्ट्रवाद अमर है यह मर नहीं सकता।''

आज जब हम इतनी समस्याओं से जूझ रहे है और कोई उचित मार्ग नहीं दिखाई देता तो ऐसे में हमें आज के दौर में जयषंकर प्रसाद जैसे साहित्यकार की कमी अत्याधिक विचलित कर देती है जो साधारण जनता की रग–रग से परिचित थे और जानते थे कि किस प्रकार जनता में नवीन चेतना का संचार कर उससे देषहित साधा जा सकता है।